

सप्तमोऽध्यायः
विवाहधर्मवर्णनम्
विवाहधर्म का वर्णन

ब्रह्मोवाच

असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः। सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने॥ १॥
सहजो न भवेद्यस्या न च विज्ञायते पिता। नोपयच्छेत् तां प्राज्ञः पुत्रिकाधर्मशङ्कया॥ २॥
ब्राह्मणानां प्रशस्ता स्यात्सवर्णा दारकर्मणि। कामस्तु प्रवृत्तानामिमाः स्युः क्रमशोऽवराः॥ ३॥

ब्रह्मदेव कहते हैं— हे राजन्! अपने माता की सात पीढ़ी के सपिण्ड तथा पिता की सगोत्र कन्या के अतिरिक्त द्विजाति वालों का अन्य कन्याओं के साथ मैथुन तथा वैवाहिक सम्बन्ध प्रशंसित कहा गया है। जिस कन्या का सगा भ्राता न हो, पिता का भी पता न चल रहा हो, प्राज्ञ पुरुष पुत्रिका की आशंका से उससे विवाह न करे। ब्राह्मण का विवाह ब्राह्मण के घर में ही उत्तम कहा गया है। काम प्रवृत्ति के कारण वह क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र के यहाँ भी विवाह कर सकता है, तथापि उसकी तुलना में तीनों स्त्रीगण नीच ही हैं॥ १-३॥

क्षत्रस्यापि सवर्णा स्यात्प्रथमा द्विजसत्तमाः। द्वे चावरे तथा प्रोक्ते कामतस्तु न धर्मतः॥ ४॥
वैश्यस्यैका वरा प्रोक्ता सवर्णा चैव धर्मतः। तथावरा कामास्तु द्वितीया न तु धर्मतः॥ ५॥
शूद्रैव भार्या शूद्रस्य धर्मतो मनुरब्रवीत्। चतुर्णामपि वर्णानां परिणेता द्विजोत्तमः॥ ६॥
न ब्राह्मणक्षत्रिययोरापद्यपि हि तिष्ठतोः। कस्मिंश्चिदपि वृत्तान्ते शूद्रा भार्योपदिश्यते॥ ७॥
हीनजातिस्त्रियं मोहादुद्वहन्तो द्विजातयः। कुलान्येव नयन्त्याशु ससन्तानानि शूद्रताम्॥ ८॥

हे द्विजसत्तमगण! क्षत्रिय भी धर्मपूर्वक क्षत्रिय कन्या से विवाह करे। यह उत्तम कहा गया है। लेकिन काम प्रवृत्ति के कारण वह वैश्य तथा शूद्र के साथ भी विवाह कर सकता है, परन्तु यह धर्म की दृष्टि से उचित नहीं है। वैश्य हेतु अपने ही वर्ण की कन्या से विवाहार्थ नियम है। वह कामवशात् केवल शूद्रा से विवाह कर सकता है तथापि वह धार्मिक दृष्टि से उचित नहीं है। शूद्र की स्त्री को केवल शूद्र कुलोत्पन्न होना चाहिये, यह मनु का कथन है। उत्तम द्विज ब्राह्मण चारों वर्ण की कन्या से विवाह कर सकता है तथापि आपत्ति आसन्न होने पर भी ब्राह्मण तथा क्षत्रिय शूद्रा कन्या को पत्नी न बनायें। द्विजाति वाले अज्ञानतः नीच कुलोत्पन्ना को पत्नी रूप में वरण करके अपनी सन्तति तथा कुल को भी शूद्र बना लेते हैं॥ ४-८॥

शूद्रमारोप्य वेद्यां तु पतितोत्रिर्बभूव ह। उतथ्यः पुत्रजननात्पतितत्वमवाप्तवान्॥ ९॥
शूद्रस्य पुत्रमासाद्य शौनकः शूद्रतां गतः। भृग्वादयोप्येवमेव पतितत्वमवाप्नुयुः॥ १०॥
शूद्रां शयनमारोप्य ब्राह्मणो यात्यधोगतिम्। जनयित्वा सुतं तस्यां ब्राह्मण्यादेव हीयते॥ ११॥
दैवपित्र्यातिथेयानि तत्प्रधानानि यस्य तु। नादन्ति पितरो देवाः स च स्वर्गं न गच्छति॥ १२॥
वृषलीफेनपीतस्य निःश्वासोपहतस्य च। तस्यां चैव प्रसूतस्य निष्कृतिर्न विधीयते॥ १३॥

यह कहा गया है कि महर्षि अत्रि वेदी पर शूद्र को आरोपित करके स्वयं पतित हो गये। उतथ्य पुत्र उत्पन्न करके पतित हो

गये। शौनक शूद्र के पुत्र का वरण करके स्वयं शूद्र हो गये तथा भृगु आदि भी पतित हो गये। ब्राह्मण शय्या पर शूद्रा को आरोपित करके अर्थात् स्त्री बनाकर अधोगति पाता है तथा उससे पुत्रोत्पत्ति करके ब्रह्मतेजरहित हो जाता है। जो ऐसे शूद्रवत् ब्राह्मण को प्रधान बनाकर दैव, पितृ तथा आतिथ्य कर्म को करते हैं, वहाँ पितृगण तथा देवता भोजन ही नहीं करते वह व्यक्ति स्वर्गगमन कदापि नहीं कर सकता। वृषली (शूद्रा) के फेन को पीकर तथा निश्वास से उपहत होकर जो रहता है तथा उससे जो उत्पन्न होता है, उसका कहीं भी भला नहीं है॥१-१३॥

चतुर्णामपि विप्रेन्द्राः प्रेत्येह च हिताहितम्। समासतो ब्रवीम्येष विवाहाष्टकमुत्तमम्॥ १४॥
ब्राह्मो दैवस्तथा चार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः। गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः॥ १५॥
ये यस्य धर्मा वर्णस्य गुणदोषौ च यस्य यौ। शृणुध्वं तदिद्वजश्रेष्ठाः प्रसवे च गुणागुणम्॥ १६॥

हे विप्रेन्द्रगण! मैं चारों वर्णों के लिए इहलोक तथा परलोक में हितकारी आठ विवाहों का संक्षिप्त वर्णन करता हूँ। कृपया श्रवण करें। ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व तथा राक्षस तथा सर्वाधिक अधम पैशाच रूप अष्टविवाह कहे गये हैं। जिस वर्ण हेतु जो विवाह विहित है, उसके जो गुणदोष हैं उन्हें सुनें॥१४-१६॥

विप्रस्य चतुरः पूर्वाक्षत्रस्य चतुरोऽवरान्। विदूः शूद्रयोस्तु त्रीनेव विद्यान्धर्मनराक्षसान्॥ १७॥
चतुरो ब्राह्मणस्याद्यान्प्रशस्तान्कवयो विदुः। राक्षसं क्षत्रियस्यैकमासुरं वैश्यशूद्रयोः॥ १८॥
क्षत्रियाणां त्रयो धर्म्या द्वावधर्म्यौ स्मृताविह। पैशाचश्चासुरश्चैव न कर्तव्यौ कथञ्चन॥ १९॥
पृथक्पृथक्वा मिश्रौ वा विवाहौ पूर्वचोदितौ। गान्धर्वो राक्षसश्चैव धर्म्यौ क्षत्रस्य तौ स्मृतौ॥ २०॥
आच्छाद्य चार्चयित्वा तु श्रुतशीलवते स्वयम्। आहूय दानं कन्याया ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्तितः॥ २१॥

ब्राह्मण हेतु ब्राह्म, दैव, आर्ष तथा प्राजापत्य विवाह संस्कार उत्तम कहे गये हैं। क्षत्रियों के लिये आसुर, गान्धर्व, राक्षस तथा पैशाच विवाह विहित हैं। वैश्य तथा शूद्र हेतु राक्षस विवाह छोड़कर शेष तीन विहित माने गये हैं। पण्डितगण ने ब्राह्मणों हेतु ब्राह्म, दैव, आर्ष तथा प्राजापत्य विवाह ही श्रेयस्कर कहा है। राक्षस विवाह क्षत्रियों के लिए प्रशस्त है। आसुर विवाह वैश्य तथा शूद्र हेतु मान्य है। क्षत्रिय हेतु तीन प्रकार के विवाह धर्म से अनुमोदित हैं। उनके लिये पैशाच तथा आसुर विवाह अधर्मप्रद हैं। वे किसी भी स्थिति में ये दो विवाह न करें। यहाँ पूर्व में कहे दो-दो विवाह को सम्मिलित करके अथवा पृथक्करने का भी विधान है। क्षत्रियगण हेतु गान्धर्व तथा राक्षस विवाह करणीय माने गये हैं। श्रुति ज्ञानयुक्त सम्पन्न सुशील वर को स्वयं अपने यहाँ बुलाकर उसे सम्मान के साथ पूजित करके तथा वस्त्र ओढ़ाकर कन्यादान करने की विधि ही ब्राह्मधर्म विवाह है॥१७-२१॥

वितते चापि यज्ञे तु कर्म कुर्वति चार्त्विजि। अलङ्कृत्य सुतादानं दैवो धर्म उदाहृतः॥ २२॥
एकं गोमिथुनं द्वे वा वरादादाय धर्मतः। कन्याप्रदानं विधिवदार्षियो धर्म उच्यते॥ २३॥
सहोभौ चरतं धर्ममिति वाचानुभाष्य तु। कन्याप्रदानमभ्यर्च्य प्राजापत्यविधिः स्मृतः॥ २४॥
ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्त्वा कन्यायाश्चैव शक्तितः। कन्याप्रदानं स्वच्छन्दादासुरो धर्म उच्यते॥ २५॥
इच्छयान्योऽन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च। गान्धर्वः स विधिर्ज्ञेयो मैथुन्यः कामसम्भवः॥ २६॥

विवाह यज्ञ में पुरोहित द्वारा विधिवत् कर्म से ऋतुक कन्या को वस्त्रालंकार से भूषित करके उसका कन्यादान कर देना दैवधर्म विवाह है। वर से धर्मतः एक-दो गौ युगल लेकर बदले में विधिवत् किया गया कन्यादान आर्ष विवाह है। वर कन्या को एकत्र रहने के नियमों की शिक्षा प्रदान करके विधिपूर्वक कन्यादान करके यह कहे— तुम दोनों साथ-साथ रहकर धर्माचरण करो। यह प्राजापत्य विवाह है। अपनी सामर्थ्य के अनुसार कन्या के बन्धुगण को तथा कन्या को धन प्रदान करके विवाह करने को आसुर विवाह कहा गया है। कन्या तथा वर स्वेच्छा से कामवासनाजनित जो संयोग (अन्योन्य संयोग) होता है, वह गान्धर्व विवाह है॥२२-२६॥

हत्वा छित्वा च भित्वा च क्रोशन्तीं रुदतीं गृहात्। प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसो विधिरुच्यते॥ २७॥
सुप्तां मत्तां प्रमत्तां च रहो यत्रोपगच्छति। स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचः कथितोऽष्टमः॥ २८॥

जलपूर्वं द्विजाग्र्याणां कन्यादानं प्रशस्यते। इतरेषां तु वर्णानामितरेतरकाम्यया॥ २९॥
यो यस्यैषां विवाहानां विभूनां कीर्तितो गुणः। तं निबोधत वै विप्राः सम्यक्कीर्तयतो मम॥ ३०॥

हरण करके, कन्या पर लगे माता-पितादि के प्रतिबन्ध को तोड़कर पिता के घर से कन्या को जो रोती-चिल्लाती है, बलात् हरण कर ले जाना राक्षस विवाह है। एकान्त में सोती मदादि से उन्मत्त अथवा प्रमाद में निद्रारत दूषित स्त्री के साथ किया गया, छिपकर किया गया समागम पापमय पैशाच विवाह है। द्विजगण का कन्यादान जल लेकर किया जाना प्रशस्त है। अन्य वर्ण वाले आपसी इच्छानुरूप किसी भी पदार्थ से कर सकते हैं। हे विप्रगण! ये सभी सामर्थ्यशील विवाह हैं, उनके गुणों को सम्यक्तया कहता हूँ, श्रवण करो॥ २७-३०॥

कुलानि दश पूर्वाणि तथान्यानि दशैव तु। स हि तान्यात्मना चैवं मोचयत्येनसो ध्रुवम्॥ ३१॥
ब्राह्मीपुत्रः सुकृतकृद्देवोढाजं सुतं शृणु। दैवोढाजः सुतो विप्राः सप्त सप्त परावरान्॥

आर्षोढाजः सुतः स्त्रीणां पुरुषांस्तारयेद्विजः॥ ३२॥
ब्राह्मादिषु विवाहेषु चतुर्ष्वेवानुपूर्वशः। ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रा जायन्ते शिष्टसम्पत्ताः॥ ३३॥
रूपसत्त्वगुणोपेता धनवन्तो यशस्विनः। पुत्रवन्तोऽथ धर्मिष्ठा जीवन्ति च शतं समाः॥ ३४॥

ब्राह्मविवाहोत्पन्न सत्कर्मरत पुत्र दस पूर्व की पीढ़ी तथा दस आगे की पीढ़ी तथा स्वयं इस प्रकार २१ पीढ़ियों को महान् पापों से मुक्त कर देता है, यह निश्चित है। अब दैवविवाहोत्पन्न पुत्र का गुण सुनें। हे विप्रगण! वह धर्मात्मा पुत्र ७ पूर्व की पीढ़ी तथा ७ आगे की पीढ़ी तथा स्वयं — इस प्रकार १५ पीढ़ियों को पापों से मुक्त कर देता है। हे द्विजगण! आर्षविवाहोत्पन्न पुत्र भी इसी प्रकार १५ पीढ़ियों का उद्धार करता है। यही गुण प्राजापत्य विवाह का भी है। इन ४ विवाहों से उत्पन्न सन्तान ब्रह्मतेजमय, शिष्टों से अनुमोदित, रूपवान्, पराक्रमी, गुणी, धनी, यशवान्, पुत्रवान्, धार्मिक होते हैं। वे १०० वर्ष पर्यन्त जीवित रहते हैं॥ ३१-३४॥

इतरेषु निबोधध्वं नृशंसानृतवादिनः। जायन्ते दुर्विवाहेषु ब्रह्मधर्मद्विषः सुताः॥ ३५॥
अनिन्दितैः स्त्रीविवाहैरनिन्द्या भवति प्रजा। निन्दितनिंदिता नृणां तस्मान्निन्द्यान्निवर्जयेत्॥ ३६॥
करग्रहणसंस्काराः सवर्णासु भवन्ति वै। असवर्णास्वयं ज्ञेयो विधिरुद्धाहकर्मणि॥ ३७॥

अब अन्य चार विवाहोत्पन्न पुत्रों के सम्बन्ध में सुनें। दूषित विवाहोत्पन्न सन्तान मिथ्यावादी, ब्रह्मद्वेषी तथा धर्मद्वेषी होते हैं। अनिन्दित विवाह की सन्तति अनिन्दित होती है। निन्दितविवाह से उत्पन्न सन्तति भी निन्दित होती है। व्यक्ति सर्वदा निन्दित विवाहों का वर्जन करे। अपने वर्ण की कन्या के साथ पाणिग्रहण संस्कार होता है। अन्य वर्ण की कन्या के साथ विवाहकाल में जो धारण करने की विधि है, वह कही जा रही है॥ ३५-३७॥

बाणः क्षत्रियया ग्राह्यः प्रतोदो वैश्यकन्यया। वसनस्य दशा ग्राह्या शूद्रयोत्कृष्टवेदने॥ ३८॥
न कन्यायाः पिता विद्वान्गृहीयाच्छुल्कमणवपि। गृहीन्हि शुल्कं लोभेन स्यान्नरोऽपत्यविक्रयी॥ ३९॥
स्त्रीधनानि तु ये मोहादुपजीवन्ति बान्धवाः। नारीयानानि वस्त्रं वा ते पापा यान्त्यधोगतिम्॥ ४०॥
आर्षे गोमिथुनं शुल्कं केचिदाहुर्मूषैव तत्। अल्पो वापि महान्वापि विक्रयस्तावदेव सः॥ ४१॥
यासां नाददते शुल्कं ज्ञातयो न स विक्रयः। अर्हणं तत्कुमारीणामनृशंस्यं च केवलम्॥ ४२॥
इत्थं दारान्समासाद्य देशमग्र्यं समावसेत्। ब्राह्मणो द्विजशार्दूल य इच्छेद्विपुलं यशः॥ ४३॥

असवर्ण विवाहकाल में क्षत्रिय कन्या बाण धारण करे, वैश्य कन्या चाबुक ग्रहण करे। यदि शूद्र कन्या का विवाह उच्च जाति से हो तब वह वस्त्र का आंचल ले। विद्वान् पिता को एक कौड़ी भी शुल्क जामाता से नहीं लेना चाहिये। लोभवशात् शुल्क लेना सन्तान विक्रय है। अज्ञानतः जो पिता अथवा बन्धु आदि कन्या से सम्बन्धित धन का उपभोग करते हैं अथवा वहाँ से प्राप्त वस्त्रादि

को धारण करते हैं, वे अधोगामी होते हैं। आर्ष विवाह में शुल्क हेतु गौ देने की जो परम्परा कही गयी है वह मिथ्या परम्परा है। भले ही अल्पमात्रा में कुछ लिया गया हो, अथवा अधिक मात्रा में, वह सब विक्रय ही है। वर द्वारा जो धन कन्यापक्ष को दिया जाता है, यदि उस धन में से कन्या के बन्धु आदि शुल्क नहीं लेते, तब वह कन्या विक्रय नहीं है। यह धन तो कन्या के सत्कारार्थ प्रदत्त है। यह धन कन्या के प्रति वर पक्ष की कृपा है। हे द्विजशार्दूल! जो ब्राह्मण महान् यश की अभिलाषा करता है, उसे उक्त विधि के अनुसार स्त्री प्रतिग्रह करके अग्रगामी देश में निवास करना चाहिये॥३८-४३॥

ऋषय ऊचुः

को देशः परमो ब्रह्मन्कश्च पुण्यो मतस्तवा प्रवसन् यत्र विप्रेन्द्र यशः प्राप्नोति कञ्चन॥ ४४॥

ऋषि कहते हैं- हे ब्रह्मन्! कौन से देश पुण्यप्रद तथा उत्तम कहे गये हैं, जहाँ निवास करने वाला यश का भागी होता है?॥४४॥

ब्रह्मोवाच

न हीयते यत्र धर्मश्चतुष्पात्स कलो द्विजाः। स देशः परमो विप्राः स च पुण्यो मतो मम॥ ४५॥

विद्वद्भिः सेवितो धर्मो यस्मिन्देसे प्रवर्तते। शास्त्रोक्तश्चापि विप्रेन्द्राः स देशः परमो मतः॥ ४६॥

ब्रह्मदेव कहते हैं- हे विप्रवृन्द! जहाँ परधर्म के चारों चरणों की हानि नहीं होती है वह देश श्रेष्ठ तथा पुण्यप्रद है। हे विप्रेन्द्रगण! जहाँ विद्वानों से आचरित तथा शास्त्रोक्त धर्म प्रचलित रहता है, वह देश अत्यन्त श्रेष्ठ एवं पुण्यदायक है॥४५-४६॥

ऋषय ऊचुः

विद्वद्भिः सेवितं धर्मं शास्त्रोक्तं च सुरोत्तम। वदास्मासु सुरश्रेष्ठ कौतुकं परमं हि नः॥ ४७॥

ऋषिगण कहते हैं- हे सुरश्रेष्ठ! सुरोत्तम! हमारे मन में विद्वानों से आचरित तथा शास्त्रोक्त धर्मों को सुनने हेतु परम कौतुक हो रहा है। कृपया उनके बारे में कहें॥४७॥

ब्रह्मोवाच

विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर्नित्यमद्वेषरागिभिः। हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तं निबोधत॥ ४८॥

कामात्मता न प्रशस्ता न वेहास्याप्यकामता। काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः॥ ४९॥

सङ्कल्पज्जायते कामो यज्ञाद्यानि च सर्वशः। व्रताः नियमधर्माश्च सर्वे सङ्कल्पजाः स्मृताः॥ ५०॥

कामादृते क्रियाकारी दृश्यते नेह कर्हिचित्। यद्यद्वि कुरुते कश्चित्तत्तत्कामस्य चेष्टितम्॥ ५१॥

निगमो धर्ममूलं स्यात्स्मृतिशीले तथैव च। तथाचारश्च साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च॥ ५२॥

सर्वं तु समवेक्षेत निश्चयं ज्ञानचक्षुषा। श्रुतिप्राधान्यतो विद्वान्स्वधर्मे निवसेत वै॥ ५३॥

श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन्सदा नरः। प्राप्य चेह परां कीर्तिं याति शक्रसलोकताम्॥ ५४॥

ब्रह्मदेव कहते हैं- हे ऋषिवृन्द! अब मैं रागद्वेषरहित सत्पुरुषों तथा विद्वानों से आचरित तथा हृदयानुगत धर्म को कहता हूँ, सुनें। इस लोक में फलेच्छायुक्त कर्मारम्भ को प्रशस्त नहीं कहा गया है। साथ ही फलेच्छारहित कर्म को भी प्रशंसित नहीं किया गया है। इसका कारण यह है कि काम्य कर्म भी वेदसम्मत हैं तथा निष्काम कर्म-योग भी वैदिक ही है। यज्ञादि कर्म में संकल्प प्रधान रहता है। व्रत, नियम तथा धर्मकार्य संकल्पोत्पन्न कहे गये हैं। संकल्प ही कामोत्पत्ति का मूल कारण है। इहलोक में कहीं भी इच्छा अथवा कामनारहित कर्म में प्रवृत्त होने वाला दीखता ही नहीं। मनुष्य का प्रत्येक कार्य ही कामनाजनित चेष्टा से ही होता है, सर्वधर्म के मूल में वेद तथा स्मृतियाँ हैं। यहाँ धर्म का निर्णय सत्पुरुषगण द्वारा आचरित

शील तथा सदाचारयुक्त कर्म का होता है तथा आत्मसंतोष देने वाले कर्मों को ज्ञाननेत्र से देखकर किया जाता है। यह सब विचार स्थिर करके विद्वान् व्यक्ति वेदों को विशेषता प्रदान करके अपने धर्म पर आस्था रखे। श्रुति तथा स्मृति से अनुमोदित धर्म का पालन करके व्यक्ति इहलोक में कीर्तिवान् होकर अन्त में इन्द्रलोकगामी हो जाता है॥४८-५४॥

श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः। ते सर्वार्थेषु मीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्बभौ॥ ५५॥

योऽवमन्येत ते चोभे हेतुशास्त्राश्रयद्विजः। स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः॥ ५६॥

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः। एतच्चतुर्विधं विप्राः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्॥ ५७॥

श्रुति ही वेद है तथा स्मृति ही धर्मशास्त्र है। सभी कार्यों की मीमांसा इनसे ही की जानी चाहिये। सभी धर्मकार्य वेद तथा स्मृति से ही शोभित होता है। जो द्विजगण हेतुवादी होकर वेद तथा स्मृति की बात नहीं मानते, उनको सज्जनों द्वारा समाज से बहिष्कृत कर देना चाहिये। वेदनिन्दक तो नास्तिक ही है। हे विप्रवृन्द! वेद, स्मृति, सदाचार तथा आत्मानुकूल प्रिय कार्य ही धर्म के यथार्थ लक्षण हैं॥५५-५७॥

धर्मज्ञानं भवेद्विप्रा अर्थकामेष्वसज्जताम्। धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणात्रैगमं परम्॥ ५८॥

निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः। अधिकारो भवेत्तस्य वेदेषु च जपेषु च॥ ५९॥

सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्दन्तरम्। तदेव निर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते॥ ६०॥

यस्मिन् देशे य आचारः पारम्पर्यक्रमागतः। वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते॥ ६१॥

कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पञ्चालाः शूरसेनयः। एष ब्रह्मर्षिदेशो वै ब्रह्मावर्तदन्तरम्॥ ६२॥

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः। स्वं स्वं चरित्रं शिक्षन्ति पृथिव्यां सर्वमानवाः॥ ६३॥

हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्ये यत्प्राग्विनशनादपि। प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः॥ ६४॥

उन लोगों को ही धर्म का यथार्थ ज्ञान मिलता है जो अर्थ एवं काम में अधिक लिप्त नहीं रहते तथा धर्म के प्रति सतत जिज्ञासु बने रहते हैं। इनके लिये वेद ही सर्वश्रेष्ठ प्रमाण है। जिसके लिये गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टिपर्यन्त के सर्वसंस्कार मन्त्रोच्चारण से करने का विधान है (अर्थात् द्विज), वही वेद तथा जप का अधिकारी है। दृषद्वती तथा सरस्वती देव नदी के बीच की जो भूमि है वही परम पवित्र ब्रह्मावर्त है। जिस देश में जो आचार आचरित होता है तथा जो व्यवहार व्यवहृत होता है अर्थात् परम्परा से चला आ रहा है, वही वहाँ के वासी चारों वर्ण वालों तथा वर्णसंकरों का सदाचार है। ब्रह्मावर्त के उपरान्त ब्रह्मवादीगण के प्रदेश हैं कुरु, मत्स्य, पांचाल तथा शूरसेना। इन देशों में जो अग्रजन्मा ब्राह्मण हैं, संसार के सभी मनुष्य उनसे अपने चरित्र की शिक्षा प्राप्त करें। हिमालय तथा विन्ध्य के मध्य का अर्थात् कुरुक्षेत्र के पूर्व का तथा प्रयाग के पश्चिम का सभी क्षेत्र मध्यदेश के नाम से प्रसिद्ध है॥५८-६४॥

आ समुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात्। तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्त्तं विदुर्बुधाः॥ ६५॥

अटते यत्र कृष्णा गौर्मृगो नित्यं स्वभावतः। स ज्ञेयो याज्ञिको देशो म्लेच्छदेशस्त्वतः परः॥ ६६॥

एतान्नित्यं शुभान्देशान्संश्रयेत द्विजोत्तमः। यस्मिन्कस्मिंश्च निवसेत्पादजो वृत्तिकर्षितः॥ ६७॥

प्रकीर्तितेयं धर्मस्य बुधैर्योनिर्द्विजोत्तमाः। सम्भवश्चास्य सर्वस्य समासात्र तु विस्तरात्॥ ६८॥

॥ इति श्रीभविष्यमहापुराणे शतार्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि

विवाहधर्मवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

पूर्व में समुद्र तक तथा पश्चिम में भी समुद्रपर्यन्त विस्तार वाला, हिमाचल तथा विन्ध्य के मध्य वाला प्रदेश विद्वानों द्वारा आर्यावर्त कहा जाता है। जहाँ कृष्ण गौ तथा कृष्णसार मृग नित्य विचरते हों, वही यज्ञ योग्य देश है, इस के अतिरिक्त म्लेच्छ देश जाने। श्रेष्ठ ब्राह्मण को ऐसे कल्याणप्रद देश का आश्रय लेना चाहिये। विराट् पुरुष के चरण से उत्पन्न शूद्र अपनी जीविका के

अनुसार कहीं भी निवास कर सकते हैं। वे इस विषय को लेकर प्रतिबन्धित नहीं हैं। हे द्विजोत्तमगण! विद्वानों ने धर्मज्ञान अर्जनार्थ यही शिक्षा दी है। मैंने उसे कह दिया। सभी की उत्पत्ति का वर्णन संक्षिप्त रूप में मैंने कहा॥६५-६८॥

॥ श्रीभविष्यमहापुराण के शतार्थ साहस्री नामक संहिता के ब्राह्मपर्व में
विवाहधर्म का वर्णन नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥७॥

★★★